'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १३४ | वाराणसी, शनिवार, २१ नवम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

साहित्यकार-परिषद् में

अमृतसर १२-११-'५९

पक्षपाती तटस्थता : साहित्यिक का धर्म

मेरे अत्यन्त प्रिय मित्रो, मैं वर्णन नहीं कर सकता कि इस छोटे से सम्मेलन से मुझे कितना आनन्द हुआ और कितना बल मिला है। अभी हम तमिल-व्याख्यान सुन रहे थे। वह भाषा मुझे बहुत मीठी लगती है। लेकिन मुझे शर्म मालूम होती है कि मैं अभी तक तमिल बोल नहीं सकता। अभी अप्पाराव हिंदी में बोले। उनकी मातृभाषा तो तेलगु थी। मैं ये सब भाषाएँ समझता तो हूँ, लेकिन बोल नहीं सकता, इसलिए शर्मिन्दा हूँ। आप लोगों को मालूम नहीं होगा कि अप्पाराव मेरे गुरु हैं। मैंने जेल में तेलगु सीखने की कोशिश की थी। उसके बाद मेरा तेलगु का ज्ञान बढ़े, इस उद्देश्य से तेलगु मित्रों ने अप्पाराव से सिफारिश की। इसलिए वे मेरे पास वर्धा आये और कुछ रोज रहे। उन्होंने मुझे तेलगु सिखाने की बहुत कोशिश की, जिससे मैं तेलगु समझता हूँ, लेकिन बोल नहीं सकता। दक्षिण के लोग हिन्दी बोलने की बहुत कोशिश करते हैं और बोल भी लेते हैं।

मातृभाषा सर्वाधिक मधुर

मैं जब तमिल-व्याख्यान सुन रहा था तो मुझे भारतीयार का एक पद्य याद आया, जिसमें कवि कहता है कि मैं जितनी जबानें जानता हूँ, उन सबमें तमिल जैसी मीठी जबान मैंने नहीं सुनी। तमिल की मधुरता मैं भी कबूल करता हूँ। मेरे कान अभ्यस्त हैं और भाषा में जो नाद-माधुर्य होता है, उसके स्वभाव में जो चीज होती है, उसे मैं पकड़ लेता हूँ। जब भारतीयार की यह कविता मैंने पढ़ी तो उसका कुछ हिस्सा मैंने बदजबानी कर लिया था। मुझे वह सही मालूम हुआ। मैंने उसमें थोड़ा फर्क किया। भारतीयार कहता है कि 'तमिल भाषा के समान मधुर भाषा मैंने नहीं सुनी।' उसके बदले मैंने कहा कि 'मातृभाषा के समान मधुर भाषा मैंने नहीं सुनी।' हरएक को मातृभाषा, अपनी जबान मीठी लगती है। सिर्फ लगती ही नहीं, मीठी होती भी है। जब कभी मैं परमेश्वर की योजना को याद करता हूँ तो लगता है कि उसकी योजना कितनी दयामय है कि उसने हर बच्चे को माता के उदर में जन्म दिया। इसलिए हरएक को प्रेम की भाषा पहले ही दिन से सीखने को मिलती है। जिस मातृभाषा में वह प्रेम प्रकट होता है, स्वाभाविक ही मनुष्य को वह भाषा मीठी मालूम होती है। इसीलिए और भाषाओं की तुलना में वह विशेष मीठी होती है, क्योंकि भगवान के एक सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि की वह भाषा होती है। माता से बढ़कर भगवान का श्रेष्ठ प्रतिनिधि दूसरा कौन हो सकता है? कभी-कभी लोगों को आश्चर्य होता है कि यह मनुष्य ब्रह्मचारी रहा है, फिर भी माता के लिए इसे इतना आदर कैसे है? वे समझते नहीं कि इस शख्स ने ब्रह्मचर्य की कोशिश की है, इसीलिए उसे माता के लिए अत्यन्त आदर है।

'जय-जगत्' और भारत-प्रेम परस्पर अविरुद्ध

मैं कहना चाहता हूँ कि यह कोई आकस्मिक घटना नहीं कि हिन्दुस्तान में १४ विकसित भाषाएँ मौजूद हैं। अभी आपने गीत सुना ही था : 'भारतेर महामानवेर सागरतीरे।' भारत के इस समुद्र में दुनियाभर की संस्कार-नदियाँ मिली हैं। इसलिए यहाँ के प्राचीनतम ग्रंथ में एक नवीनतम शब्द हमें मिल गया, 'विश्वमानुषः।' ऋग्वेद में यह शब्द आया है, जो आज के हमारे कर्तव्य को बहुत अच्छी तरह प्रकट करता है। यह शब्द यहाँकी संस्कृति को इसीलिए सूझा कि इस संस्कृति में निरंतर यही खयाल किया गया है कि हम कोई संकुचित नहीं, परम व्यापक हैं। इसीको 'दर्शन' कहते हैं। फिर उसके अनुसार आचरण और जीवन बनाने के लिए चाहे समय लगे, चाहे युग बीत जाय, लेकिन दर्शन तो दर्शन ही है। इसलिए भारत के लिए जो प्रेम मैं अपने में पाता हूँ, बावजूद इसके कि 'जय-जगत्' का मन्त्र मैं बोलता हूँ, उस प्रेम का 'जय-जगत्' के साथ मैं कोई विरोध नहीं देखता।

तुलसीदासजी ने एक पद्य लिखा है, जो मुझे इस पदयात्रा में बार-बार याद आता है : "भलि भारत भूमि, भले कुल जन्म, समाज शरीर भलो लहिकै। करषा तजिकै परुषा, बरषा हिम-मारुत धाम सदा सहिकै। जो भजे भगवान सयान सोई। तुलसी हठ चातक ज्यों गहिके।" धन्य है यह भारत-भूमि, धन्य है यह मानव का कुल, जिसमें हमें जन्म मिला है। हमें समाज भी बहुत अच्छा मिला है और शरीर भी अच्छा मिला है, जिसमें अष्टधा प्रकृति चरितार्थ हुई है। कठोर वाणी छोड़कर बारिश, ठंड, धूप, हवा—सब सहन करते हुए जो भगवान की भक्ति करता है, वही सयाना है। अक्सर ठंड, बारिश आदि सहन करनेवालों के चित्त में बहुत दफा अहंकार, वाणी की कठोरता, क्रोध आदि होते हैं। उन सबको छोड़कर नम्र भाव से बिना अहंकार के भगवान

www.vinoba.in

की भक्ति करनेवाला सयाना है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे चातक ने हठ पकड़ लिया है, उस तरह आग्रह के साथ इस तपस्या में, हरि-भक्ति में चिपके रहकर जिस किसीने अपना जीवन बिताया, वह धन्य है। "नतु और सबै विषबीज बये। हर हाटक कामदुहा नहिकै।" नहीं तो फिर कामधेनु को नत्थी डालकर और सोने का हल बनाकर विष-बीज ही बोया, यही कहा जायगा।

इसलिए जय-जगत् के साथ भारत-भूमि का जो प्रेम महापुरुषों ने हमें यहाँ सिखाया, उसका पूरा मेल है, दोनों में किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं है। बल्कि भारत-भूमि कुल जगत् का एक छोटा-सा नमूना है। एक छोटे त्रिकोण को लेकर, जिसे कोई उपाधि न हो, हम एक सिद्धान्त सिद्ध करते हैं तो फिर वही सिद्धान्त सिद्ध करने के लिए कोई बड़ा त्रिकोण लेने की जरूरत नहीं रहती। इसी तरह भारत में एक चीज हम सिद्ध करते हैं तो वह चीज कुल दुनिया में सिद्ध होती है, ऐसी श्रद्धा रखकर आप लोगों की सेवा में आठ साल से घूम रहा हूँ।

साहित्यिक आशीर्वाद दें

आपके आशीर्वादों का मैं अत्यन्त इच्छुक हूँ। मैं जानता हूँ कि आप सारे अपने-अपने कामों में लगे हैं। जिस काम में लगने की भगवान ने मुझे भावना दी है, उस काम में समय देने के लिए आपके पास उतना अवकाश नहीं रहता होगा। लेकिन इसीलिए मैं आपके आशीर्वादों का इच्छुक हूँ कि आप इस काम में थोड़े तटस्थ रहकर सोच सकते हैं। जो खेल में शामिल होता है, वह उसे उतना नहीं पहचानता, उसके गुण-दोषों को उतना नहीं जान सकता, जितना तटस्थ साक्षी रहनेवाला जान सकता है। इसीलिए खेल में एक 'अंपायर' रखा जाता है, जो ठीक फैसला दे सके। मैंने आप लोगों को 'अंपायर' माना है। पठानकोट में सर्व-सेवा-संघ की सभा में मैंने अपने कार्यकर्ताओं से कहा था कि आपको साहित्यिकों का आशीर्वाद हासिल करना चाहिए।

मैंने उनसे यह भी कहा था कि बाहर का जीवन किस प्रकार का है, यह हमें नहीं देखना चाहिए। जहाँ उत्तम जीवन है, वहीं उत्तम विचार का संभव है—यह तो सामान्य नियम हुआ। लेकिन किसी कारण अन्दर एक चिन्तन-प्रवाह होता है, तदनुसार बाहर का जीवन नहीं बनता। फिर भी अन्तर में परम रमणीय उन्नत विचार हो सकते हैं। इसीलिए मैंने कहा कि भगवान को मानना पड़ता है, क्योंकि भगवान एक 'डिस्टर्बिंग फैक्टर' है। दुनिया में सब कुछ कार्य-कारण के नियम से चलता तो भगवान को कोई तकलीफ नहीं देनी पड़ती। लेकिन बाह्य आचरण भिन्न कोटि का होते हुए भी अन्दर उन्नत विचार की स्फूर्ति होती है। आखिर शरीर से आत्मा भिन्न तो है ही। इस हालत में आरोग्यवान शरीर में आरोग्यवान मन हो, इस सामान्य नियम के लिए असंख्य अपवाद हुए हैं और होंगे। इसलिए मैंने कार्यकर्ताओं से कहा था कि ऐसे जो भी साहित्यिक होंगे, उनके पास नम्रतापूर्वक जाकर अपने काम की जानकारी उन्हें देनी चाहिए और उनसे तटस्थ फैसला माँगना चाहिए। यही आपके आशीर्वाद का अर्थ है। मैं यह नहीं चाहता कि आप हमारे विचारों के पृष्ठपोषक बनें। आप स्वयम् स्वतंत्र हैं। आपकी आलोचना भी हमें मददगार साबित होगी। अगर आपने अनुकूल दर्शन किया तो भी हमारे लिए वह लाभदायी साबित होगा। दोनों बाजू हमें लाभ ही है।

साहित्यिक सबकी परवाह करें

एक भाई ने कहा था कि 'इन दिनों हम साहित्यिकों की इज्जत बहुत थोड़े लोग करते हैं। नेता अपनी धुन में रहते हैं। धार्मिक कहलानेवाले पुरुष भी अपने आचार-धर्मों में फँसे रहते हैं। शायद अपने को कुछ ऊँचा भी मानते हैं। फिर जो व्यवहार-कुशल माने जाते हैं, उनके पास तो हमारा कोई हिसाब ही नहीं है। वे हमारी कोई परवाह ही नहीं करते।' मैंने उनसे पूछा कि क्या आप लोगों की परवाह करते हैं? अगर आप सबकी परवाह करते हैं तो आपके लिए काफी है। क्योंकि आप मातृस्थल में हैं और बाकी सब बच्चे हैं। बच्चे अगर माता को भूल जायँ तो बहुत हानि नहीं होती। लेकिन माँ अगर बच्चे को भूल गयी तो बहुत हानि होती है।

इन दिनों कुछ लोग मेरे पास आते हैं, जो बहुत उत्साह से बातें करते हैं। जो आगामी भविष्यकाल का चिन्तन करनेवाले होते हैं। सब पुरानी चीजें छोड़ चुके होते हैं, यहाँ तक कि ईश्वर को भी नहीं मानते। मैं उनसे कहता हूँ कि आप ईश्वर को छोड़ते हैं तो कोई परवाह नहीं, ईश्वर आपको नहीं छोड़ता। आप परमेश्वर को मानें या न मानें, इससे कोई नुकसान नहीं होगा। वह आपको मानता ही है। अगर ऐसा कोई दिन आये, जब कि भगवान तुम्हें, हमें मानना छोड़ दे, तब तो सबके लिए खतरा पैदा होगा। इसलिए साहित्यिकों की कोई परवाह नहीं करता, ऐसा खयाल साहित्यिकों को नहीं करना चाहिए। लोग परवाह करें या न करें, साहित्यिकों को सबकी परवाह करनी चाहिए और सबकी तरफ वात्सल्य-भाव से देखना चाहिए। बच्चे प्रयोग करते हैं तो माता उन प्रयोगों को देखती है। इस तरह साहित्यिकों की तटस्थ भूमिका होनी चाहिए। लेकिन सिर्फ तटस्थ ही नहीं, बल्कि पक्षपाती तटस्थ भूमिका होनी चाहिए। उदासीन तटस्थ नहीं। वे दुनिया का दर्शन तटस्थ रूप से करें। लोगों से, उनके विकारों से अलग रहकर उनकी तरफ देखें, फिर भी उनके लिए हमदर्दी, पक्षपात हो।

वेद में एक मंत्र है: "आयन्मा वेना अरुहन् ऋतस्य। एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे। मनश्चिन्मे हृद् आ प्रत्यवोचत्। अचिक्रदन् शिशुमान् सखायः॥" परम रमणीय सत्य के पर्वत पर बैठकर मैं वहाँ आनन्द लूट रहा था, अकेला एकान्त में बैठा था। उतने में मेरे हृदय से एक मानसिक उद्गार निकला—ये सारे मेरे शिशुमान सखा, मित्र, मेरे पास आयें। मैं तो संसार से मुक्त ऊपर सत्य-गिरि पर बैठा हुआ हूँ, लेकिन ये मेरे मित्र गृहस्थ-धर्मी, संसार में पड़े लोग दुःख से रो रहे हैं। मेरी मदद के लिए चिल्लाते हैं। जब मैं यह देखता हूँ तो मुझे पर्वत-पृष्ठ से नीचे उतरकर, सत्य की भूमिका छोड़े बिना उनकी सेवा करनी पड़ती है। यह अध्यात्मभाव है। जो वहाँ नहीं लिखा है, सिर्फ सूचित किया गया है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि जो तटस्थ, निर्विकार होने पर भी संसार में बरतनेवाले सामान्य जनों के लिए अत्यन्त प्रेम रखकर चित्त में उनके लिए पक्षपात रखकर बरतेगा, वही सर्वोत्तम साहित्यिक होगा।

दोहरी शक्ति जरूरी

साहित्यिक के लिए विकारों से परिपूर्ण निर्लिप्तता अनिवार्य है। लेकिन विकारों को पहचानने के लायक उन विकारों के साथ समरस होने की शक्ति भी उतनी ही अनिवार्य है। साहित्यिक के लिए ये दो अनिवार्यताएँ हैं। बहुत दफा आश्चर्य होता है कि परम तटस्थ ऋषि व्यावहारिक ज्ञान की सूक्ष्मता और मनुष्य-स्वभाव की परख किस तरह दिखाते थे। खास कर व्यास का जो दर्शन हमें होता है, उसे देखकर आश्चर्य होता है कि मानव-भावनाओं का इतना सूक्ष्म ज्ञान उन्हें किस तरह हुआ होगा।

CC-0. Vinoba Bhave Collection.

लेकिन इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि वे निर्लिप्त एवं तटस्थ थे और बेचारे लोगों के साथ पक्षपात करने की शक्ति रखते थे। यह दोहरी शक्ति होने के कारण वे लोगों को न सिर्फ पहचानते थे, बल्कि उनके साथ हमदर्दी भी रखते थे। थर्मामीटर सबका बुखार नापता है। अगर उसे खुद का बुखार होता, तब तो वह दूसरे के बुखार को यथार्थ रीति से नाप नहीं सकता। उसे अपना बुखार नहीं होता, इसीलिए वह सबका बुखार ठीक से नाप सकता है। सबका विकारमापक इसीलिए बनता है कि वह निर्विकार है। लेकिन थर्मामीटर साहित्यकार नहीं है, द्रष्टा है। साहित्यिक में यह द्रष्टा की शक्ति, निर्लिप्तता चाहिए, लेकिन उसके साथ, बुखार के साथ हमदर्दी दिखानेवाले वैद्य का भी लक्षण चाहिए। बुखार को ठीक पहचानकर उसके निवारण के लिए दवा भी बतानी चाहिए। वे निर्विकार होने के कारण बुखार को ठीक पहचान सकेंगे। यह साहित्यिक की शक्ति है। परमात्मा की कृपा से दुनियाभर में निरन्तर ऐसे साहित्यिक हुए हैं और उनकी राह पर चलनेवाले असंख्य छोटे-मोटे साहित्यिक भी हुए हैं।

छोटे-छोटे साहित्यिक भी शक्तिशाली

आज एक भाई ने कहा कि अगर हम सत्य, शिव, सुन्दर का योग अपेक्षित रखें तो वह दुर्लभ होगा। उनका अभिप्राय यह था कि इस कसौटी पर नापा जाय तो शायद सिर्फ तुलसीदास ही खरे निकलेंगे और बाकी सारे किसी एक या दो अंश में उत्तीर्ण होंगे और बचे हुए अंशों में फेल होंगे। उनका यह अभिप्राय सही हो सकता है। मुझे हिन्दी-साहित्य का इतना ज्ञान नहीं है कि मैं अपना विचार पेश करूँ। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने तुलसीदास के लिए जो कहा, वह सर्वथा सत्य है। तुलसीदासजी की कोटि के न हों, लेकिन हम उनके रास्ते पर चलनेवाले हो सकते हैं। एक ज्ञानी को जो गुण-संपदा हासिल हो सकती है, वह उसे भी हासिल हो सकती है, जो ज्ञानी नहीं है, परन्तु ज्ञानी के वचनों पर श्रद्धा रखकर चलने की श्रद्धा जिसमें है।

मैंने इस वाक्य का प्रयोग जान-बूझकर किया है। श्रद्धा रखनेवाले को ज्ञानी का गुण-समूह मुफ्त में हासिल होता है। रामजी जो काम ज्ञान से कर सके, वही काम हनुमान श्रद्धा से कर सके। तुलसीदासजी एकआध ही निकले। लेकिन उस कोटि के न होने पर भी उस दिशा में जिनका विचार जाता है, ऐसे साहित्यिक भी बहुत काम करते हैं। मुझे तो ऐसे साहित्यिकों का विशेष आकर्षण है, जो अपूर्ण होते हुए भी पूर्ण के साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील होते हैं।

बहुत से लोगों को पूर्णिमा की रात्रि बहुत सुंदर लगती है, मुझे भी लगती है। लेकिन एक कवि ने लिखा कि जैसे रवि-शशिहीन अम्बर बिलकुल विरूप, अनाकर्षक लगता है, वैसे ही बिना भक्ति के जीवन अनाकर्षक है। दूसरी बात तो मैंने कबूल की, लेकिन रवि-शशिविहीन अम्बर मुझे तो बड़ा सुन्दर मालूम होता है। अमावास्या की रात्रि में जहाँ सूर्य भी नहीं और चंद्र भी नहीं, किसीकी जुल्मी सत्ता किसीपर नहीं चलती। तारे अपनी-अपनी रोशनी से चमकते हैं। एक चाँद होता है तो उस एक की साम्राज्यवादी सत्ता चलती है। इसलिए दूसरों का तेज फीका पड़ता है। लेकिन चाँद नहीं होता तो उस रात्रि को सारे नक्षत्र चमकते हैं। वह दृश्य बड़ा ही रमणीय मालूम होता है। इसलिए कोई महान चंद्र या सूर्य न हो, लेकिन छोटे-छोटे नक्षत्र हों, तो हमें उनका सौंदर्य कम नहीं लगता। उनका मार्गदर्शन कम नहीं मिलता। बल्कि मैं तो घूमनेवाला हूँ, इसलिए अपने अनुभव से कहता हूँ कि दिशा-दर्शन जितना स्पष्ट रात में होता है, उतना दिन में भी नहीं होता। हम किस दिशा में, किस कोण में जा रहे हैं, यह सब ज्ञान रात में अधिक होता है। सूर्य भी हमें उतनी स्पष्ट दिशा नहीं दिखा सकता, जितने ये सारे सितारे, नक्षत्र मिलकर बता सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि एक महान साहित्यिक जितना कर सकता है, उतना छोटे-छोटे साहित्यिक सब मिलकर कर सकते हैं।

इसी तरह मिलते रहिये

साहित्यिकों को मिलने की बात के बारे में मैं अपना विचार स्पष्ट करना चाहता हूँ। मैंने कल कहा था कि उपासनाएँ अनेकविध होती हैं उन सबका अनुभव लेनेवाला कोई शख्स रामकृष्ण के जैसा निकला तो जीवन का सर्वांग-दर्शन होता है। इसी तरह अगर साहित्यिक अपने अनुभवों को एकत्रित उपासना की दृष्टि से अनुभूत करें तो किसी एक सूरज से जो रोशनी नहीं मिलेगी, वह उनसे मिलेगी, दिशा-दर्शन होगा। आप अभी यहाँ आये हैं और एकत्र बैठकर आपने कुछ सहजभाव से अपने विचार प्रकट किये हैं। यह प्रथा आप जारी रखिये और बीच-बीच में मिलते रहिये, सिर्फ मिलने के लिए, और किसी उद्देश्य से नहीं। दीवाली आयी तो लड़की चंद दिन बिताने के लिए मायके जाती है, और कोई प्रयोजन नहीं होता। सिर्फ मायके जाना ही स्वयंपूर्ण प्रयोजन होता है। वैसे ही सिर्फ मिलने के लिए बीच-बीच में आप मिलते रहिये और एक-दूसरे के अनुभवों को जोड़कर उपासना कीजिये, इतनी नम्र प्रार्थना कर मैं समाप्ति करना चाहता हूँ।

इसके आगे मेरी यात्रा कुछ अज्ञात-सी होगी। इसलिए मालूम नहीं कि इस प्रकार अनेक के साथ एकत्र बैठने का कपिलाषष्ठी का योग फिर से आयेगा या नहीं। लेकिन मैंने अपने जीवन में अनुभव किया है कि शारीरिक संगति में जितना पाता हूँ, उससे बहुत ज्यादा मानसिक संगति में पाता हूँ। आपसे बार-बार मिलने का मौका नहीं आयेगा, खास कर इस तरह एकत्र मिलने का मौका नहीं आयेगा। फिर भी मेरा मन जहाँ-जहाँ जो विचार प्रकट होता है, उस सबकी समन्वित उपासना करने का अनुभव करता है। इसीलिए तमिल मुझे उतनी ही मीठी लगती है, जितनी अपनी मातृभाषा मराठी।

भारत का यह दिव्य-भव्य इतिहास

भारत का यह गौरव है कि यहाँ चौदह विकसित भाषाएँ हैं। यूरोप में विकसित भाषाएँ हैं, लेकिन उसका अभी एक देश होने को बाकी है। चीन बहुत बड़ा देश है, लेकिन उसमें अनेक भाषाएँ नहीं हैं। रूस में अनेक भाषाएँ हैं, पर विकसित नहीं हैं। हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है, जहाँ इतनी विकसित भाषाएँ एक देश में एकत्र रहती हैं। इसे मैं आकस्मिक घटना नहीं मानता। यह हमारी समाजशास्त्र की प्रगति है, जिसके कारण यह बना है। नहीं तो आज यूरोप में अलग-अलग राष्ट्र इसलिए बने हैं कि भाषाएँ अलग-अलग हैं। हमारे यहाँ भाषावार प्रान्त-रचना बनाने के समय कुछ दूषित मनोवृत्ति प्रकट हुई थी। परन्तु उसे मैं ज्यादा दूषित नहीं मानता। कारण किसीने यह माँग नहीं की कि हमारी भाषा का अलग-अलग राष्ट्र बने। ज्यादा से ज्यादा यही माँग की थी कि हमारी भाषा अलग सूबा हो। इस दृष्टि से भारत का मैं यह बड़ा भाग्य मानता हूँ और इसे उसका दिव्य-भव्य इतिहास मानता हूँ। हमारे यहाँ सन्तों ने अनेक धर्मों की सम्मिलित उपासना की है। वैसे ही अनेक भाषाओं के साहित्य और साहित्यिकों के विचारों की सम्मिलित उपासना हम करें, इतनी प्रार्थना कर आपको प्रणाम करता हूँ। ● ● ●

www.vinoba.in

प्रश्नोत्तर

गुलमर्ग (जम्मू-कश्मीर) १७-७-'५९

जर्मनी और भारत का संबंध

प्रश्न : जर्मनी में हिंदुस्तान के लिए बहुत आकर्षण क्यों है ?

विनोबाजी : इसका कारण यह है कि डेढ़ सौ साल पहले अंग्रेजी के जरिये जर्मन भाषा में उपनिषदों का तर्जुमा हुआ था। वहाँके विचारकों पर और खास कर सोपेन हावर पर उसका बहुत असर हुआ, जो दुनिया का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक था। उपनिषद् पढ़कर वह नाचने लगा। उसने कहा कि यह चीज मुझे मरने तक काम देगी। उसने उपनिषद् पर काफी लिखा। फिर गेटे ने कालिदास का 'शाकुन्तल' पढ़ा और वह उसपर आशिक हो गया। तब से जर्मन लोगों में एक जिज्ञासा पैदा हुई कि संस्कृत से हमें खूब मिलेगा। खास कर जब उन लोगों ने गीता पढ़ी तो उसका उनपर बहुत असर हुआ। गीता में युद्ध के साथ दर्शन जोड़ दिया गया है। उस समय जर्मनी में एक आवेश था। इसलिए उन्हें लगा कि यह चीज हमें आध्यात्मिक खुराक देगी। गीता में एकान्त में जाने की बात नहीं, बल्कि पराक्रम के साथ दर्शन की बात है। तब से जर्मनी में उपनिषद्, गीता और शाकुन्तल का बहुत अध्ययन हुआ। फिर वेद का भी अध्ययन हुआ। वेद का उत्तम कोष एक जर्मन ने बनाया। जब कि हिंदुस्तान में वेद छपा नहीं था, मैक्समूलर ने ऋग्वेद का सायण भाष्य के साथ अच्छा एडीशन निकाला। उसकी चालीस साल की उम्र ऋग्वेद के अध्ययन में बीती। वह ब्रह्मचारी था। उसके मरने पर लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' में एक लेख लिखा था। जब मैंने उसे पढ़ा, तब खयाल आया कि उसका जीवन कैसा था। लोकमान्य ने लिखा था : "वह ब्रह्मचारी था, इसलिए ऋग्वेद का अध्ययन कर सका। हममें ब्रह्मचर्य की कमी है, इसलिए हम वेद का अध्ययन नहीं कर पा रहे हैं। कम-से-कम चालीस साल के बाद तो ब्रह्मचर्य का पालन जरूर करना चाहिए। नहीं तो हमारा कोई दर्शन नहीं टिकेगा।"....तिलक महाराज ने जेल में एक किताब लिखी थी, जिसमें कहा था कि 'आर्यों का मूल निवास-स्थान उत्तर ध्रुव होगा।' वह किताब मेक्समूलर ने पढ़ी और फिर भारत-सरकार को लिखा कि 'आपने ऐसे महाविद्वान् को जेल में रखा है, उसे मुक्त करो तो अच्छा होगा।'..... उसीके परिणामस्वरूप तो नहीं कह सकते, फिर भी दो-चार महीने पहले ही लोकमान्य छूटे। इस तरह जर्मनी और हिंदुस्तान का संबंध है। हिंदुस्तान के बाहर संस्कृत का जितना अध्ययन होता है, उतना हिंदुस्तान की दूसरी किसी भाषा का नहीं होता। जर्मनी और हिंदुस्तान के संबंध के लिए और एक कारण था। हिंदुस्तान में अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन चल रहा था और जर्मनी भी अंग्रेजों के खिलाफ था। फिर जर्मनों ने अपने को 'आर्य' कहकर 'क्रॉस' के बदले 'स्वस्तिक' का चिन्ह लिया। इस तरह हिंदुस्तान के साथ उनकी अन्दर से बहुत ज्यादा दिलचस्पी रही है।

लोग कहते हैं कि सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम उत्साहवर्धक नहीं है। लेकिन मैं कहता हूँ कि वह बुद्धिवर्धक है। आचार्य चाणक्य कहते हैं कि मेरा सब कुछ जाय, लेकिन बुद्धि न जाय : 'बुद्धिस्तु मा गान् मम।' हम सिर्फ एक ही दफा लोगों के पास जायँ और यह अपेक्षा करें कि लोग सतत सर्वोदय-पात्र में अनाज डालते रहें तो इसे वे क्यों मानेंगे ? मैं मानता हूँ कि सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम एक सौम्य सत्याग्रह का नमूना है। वह हमें पक्की बुनियाद पर स्थिर करना चाहिए।

विवेकानन्द की गर्जना

अमेरिका में भी उपनिषदों ने ऐसा ही पराक्रम किया। 'इमरसन' और 'थोरो' जैसे दार्शनिक और 'विट्मन' और 'टाइम' जैसे कवियों पर उपनिषद का बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने विवेकानन्द की भूमिका तैयार की थी। विवेकानन्द ने एक व्याख्यान से अमेरिका को जीता। उन्होंने निडरता से कहा कि 'हिंदू-धर्म किसी व्यक्तित्व के साथ जुड़ा नहीं है। उस धर्म में किसी प्रकार का डागमा नहीं है। मुक्ति का कोई धर्म है तो वेदांत ही है। इस्लाम पैगम्बर के साथ और ईसाई धर्म ईसा के व्यक्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन हिन्दू-धर्म राम या कृष्ण जैसे किसीके भी व्यक्तित्व के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। बल्कि रामचन्द्र ने कहा कि मैं उस धर्म का पालन कर रहा हूँ, जो मनु महाराज ने कहा था। कृष्ण ने भी उपनिषदों का सार ही गीता में कहा है।

●●●

अनुक्रम

१. पक्षपाती तटस्थता : साहित्यिक का धर्म
अमृतसर १२ नवम्बर '५९ पृष्ठ ७८३
२. जर्मनी और भारत का संबंध
गुलमर्ग १७ जुलाई '५९ „ ७८६

●

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता: गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी
www.vinoba.in